

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 26: पुरज्जन का आखेट

21 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



नारद की कही कथा में, राजा पुरज्जन, आखेट के उन्माद से ग्रस्त, अपना धनुष उठाता है और वन में आखेट को निकल पड़ता है, उस रानी को पीछे छोड़ते हुए जिससे वह क्षण भर भी बिछुड़ना नहीं सह सकता था।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

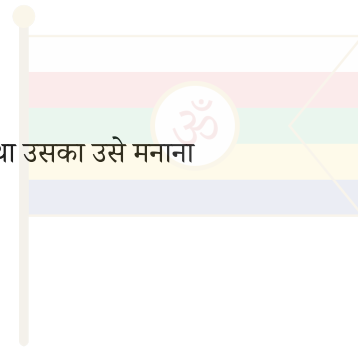
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में, देवर्षि नारद ने पुरज्जन की कथा आरम्भ की — वह आत्मा जो नौ द्वारों वाली नगरी (शरीर) में प्रवेश करती है, उसकी रानी (मन तथा इन्द्रियों) से मोहित होती है, और अपने अज्ञात मित्र, भीतर भगवान् को भूल जाती है। यह षड्विंश अध्याय उस उपदेशात्मक कथा-में-कथा

को जारी रखता है। अपनी भव्य नगरी में बसा तथा अपनी रानी का पार्श्व छोड़ने में विरले ही समर्थ, पुरञ्जन एक दिन आखेट के उन्माद से ग्रस्त हो जाता है। सज्जित तथा अलंकृत होकर, वह वन को निकल पड़ता है, आखेट में आनन्दित होते तथा अनेक प्राणियों का वध करते हुए — एक ऐसा संहार जो करुणावानों को शोकाकुल करता है। किन्तु उसकी लम्बी अनुपस्थिति उसकी रानी को आहत करती है, और जब वह लौटता है तो उसे उपेक्षित होने पर खिन्न तथा क्रुद्ध पड़ी पाता है। कोमल तथा मनाने वाले वचनों से वह उसे प्रसन्न करता है, और अपने सुख के जीवन को पुनः आरम्भ करता है। समस्त कथा एक स्पष्ट अन्योक्ति बनी रहती है, और इसका अर्थ स्पष्ट है: आत्मा, बेचैन भोग में लीन, अपनी ही श्रेष्ठ प्रकृति की उपेक्षा करती है, और लालसा, अपराध-बोध, तथा मनाने के एक चक्र में जीती है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 26 (षड्विंश अध्याय)
- अध्याय का शीर्षक: पुरञ्जन का आखेट तथा रानी का क्रोध
- मुख्य वक्ता: देवर्षि नारद, राजा प्राचीनबर्हि को अपनी कथा की निरन्तरता में (मैत्रेय के विदुर को उपदेश के भीतर)
- मुख्य श्रोता: राजा प्राचीनबर्हि (तथा विदुर)
- मुख्य स्थल: पुरञ्जन की नगरी तथा आखेट का वन (कथा के भीतर)
- केन्द्रीय विषय: पुरञ्जन का आखेट, उससे उपजा शोक, रानी का क्रोध, तथा उसका उसे मनाना
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 26, श्लोक 1–26
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 25 ने नारद की कथा आरम्भ की: पुरञ्जन, आत्मा, ने नौ द्वारों वाली नगरी में प्रवेश किया, उस पर शासन करने वाली स्त्री से मिला, और सुख के जीवन में इतना लीन हो गया कि वह असहाय रूप से ले जाया गया, अपने सच्चे भीतर के मित्र को भूलते हुए। यह षड्विंश अध्याय कथा को आगे ले जाता है, उस मोहित जीवन के बेचैन ढर्रे को दिखाते हुए — उसकी लालसाएँ, महत्त्वपूर्ण की उसकी उपेक्षा, और उसके झगड़े तथा मनाने के दौर।

पुरञ्जन आखेट को निकल पड़ता है

नारद पहले रथ का ही वर्णन करते हैं, क्योंकि यह कथा में मात्र अलंकरण नहीं है। स्वर्ण-कवच से सज्जित तथा पाँच वेगवान् अश्वों से जुता, ग्यारह सेनापतियों द्वारा संचालित तथा ऊपर तीन ध्वजाओं से चिह्नित, वह पुरञ्जन को पञ्च-प्रस्थ नामक वन की ओर ले गया। इन आरम्भिक श्लोकों में यह स्वयं शरीर का चित्र बन जाता है: रथ वह देह ही है जिसमें हम सवार हैं, तीन ध्वजाएँ उस पर फहरातीं तीन प्रकृति-गुण हैं, पाँच वेगवान् अश्व अपने विषयों के पीछे दौड़तीं पाँच इन्द्रियाँ हैं, तथा ग्यारह सेनापति दस कर्मेन्द्रिय-ज्ञानेन्द्रियाँ तथा उन्हें हाँकता चंचल मन हैं। इसके भीतर, मानो उसका स्वामी हो, आत्मा विराजमान है — जहाँ भी यह उधार का यान जाए, वहीं ले जाई जाती हुई।

स एकदा महेष्वासो रथं पञ्चाश्वमाशुगम् ।
द्वीषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पञ्चबन्धुरम् ॥ १ ॥

sa ekadā maheṣvāso ratham pañcāśvam āśu-gam dvīṣaṁ dvi-cakram ekākṣaṁ tri-veṇuṁ pañca-bandhuram

अर्थ: एक बार महाधनुर्धर पुरज्जन अपने रथ पर सवार हुआ — पाँच वेगवान् अश्वों से जुता, दो विस्फोटक अस्त्र लिए, दो चक्रों तथा एक धुरी पर टिका, और तीन ध्वजाओं तथा पाँच बन्धनों से चिह्नित। (स्कन्ध 4, अध्याय 26, श्लोक 1)

यद्यपि पुरज्जन अपनी रानी का पार्श्व क्षण भर भी छोड़ना सह नहीं सकता था, एक दिन वह आखेट के उन्माद से ग्रस्त हो गया। गर्व से अपना धनुष-बाण उठाकर, तथा आखेट के लिए अलंकृत होकर, वह वन को निकल पड़ा — अपनी उस अर्धांगिनी की परवाह किए बिना, जिसका साथ उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिए था।

चचार मृगयां तत्र दृप्त आत्तेषुकार्मुकः ।
विहाय जायामतदर्हं मृगव्यसनलालसः ॥ ४ ॥

cacāra mṛgayām tatra dṛpta ātteṣu-kārmukaḥ vihāya jāyām atad-arhām mṛga-vyasana-lālasaḥ

अर्थ: आखेट के उन्माद से ग्रस्त, गर्व से अपना धनुष-बाण उठाकर, पुरज्जन वन में आखेट को गया, अपनी रानी को पीछे छोड़ते हुए जिसे उसे नहीं छोड़ना चाहिए था। (स्कन्ध 4, अध्याय 26, श्लोक 4)



आखेट के उन्माद से ग्रस्त, पुरज्जन अपना धनुष उठाता है और, आखेट के लिए अलंकृत होकर, वन को निकल पड़ता है, उस रानी को पीछे छोड़ते हुए जिससे वह क्षण भर भी बिछड़ना नहीं सह सकता था (श्लोक 1-6)।

आखेट का शोक

वन में पुरञ्जन ने लापरवाह आनन्द से आखेट का पीछा किया, और अनेक प्राणी गिर पड़े, उनके शरीर उसके तीक्ष्ण, पंखयुक्त बाणों से बिंधे। इतना भयंकर था वह संहार कि करुणा-हृदय जन उसके द्वारा किए कष्ट को देख नहीं सके।

तत्र निर्भिन्नागात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः ।

विप्लवोऽभूद्दुःखितानां दुःसहः करुणात्मनाम् ॥ ९ ॥

tatra nirbhinnā-gātrāṇām citra-vājaiḥ śīlīmukhaiḥ viplavo 'bhūd duḥkhitānām duḥsahāḥ karuṇātmanām

अर्थ: जब वहाँ अनेक प्राणी गिरे, उनके शरीर उसके पंखयुक्त बाणों से बिंधे, तब उनके कष्ट का दृश्य करुणा-हृदय जनों के लिए असह्य था। (स्कन्ध 4, अध्याय 26, श्लोक 9)



वन में, पुरञ्जन लापरवाह आनन्द से आखेट का पीछा करता है, और उसके आखेट से उपजा कष्ट प्रत्येक करुणा-हृदय को शोकाकुल करता है (श्लोक 7-14)।

अन्ततः आखेट से थककर, तथा अपनी रानी को स्मरण करते हुए, पुरञ्जन घर की ओर मुड़ा — उसका मन, सदा की भाँति, नगरी के सुखों की ओर आगे दौड़ता हुआ।

नारद यहाँ रुककर एक गहरी बात कहते हैं। शास्त्र उन लोगों के लिए, जिनकी वासनाएँ अभी शुद्ध नहीं हुई, कुछ विधि-सम्मत आखेट तथा यज्ञ की अनुमति अवश्य देते हैं, किन्तु यह अनुमति एक सीमा-बाड़ है, अनुज्ञा-पत्र नहीं — भूख को थामने के लिए, उसे असीमित स्वीकृति देने के लिए कदापि नहीं। जो इसके स्थान पर मात्र अपनी इच्छा से कार्य करता है, शास्त्र के निर्देश की उपेक्षा करके, वह न सिद्धि पाता है, न सुख, न परम गति; वह मात्र तीनों गुणों में और गहरे धकेल दिया जाता है, अपनी वास्तविक बुद्धि खोकर, जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकता हुआ, जब तक वह पुनः अपनी इच्छा से परे किसी मार्गदर्शन के अधीन न हो जाए। पुरञ्जन का आखेट ठीक यही है — बाह्य रूप से निषिद्ध नहीं, किन्तु केवल अपने ही लिए चाहा गया, खेल का मुखौटा पहने हुए इच्छा (श्लोक 6-8)।

रानी का क्रोध

किन्तु वह लौटकर अपनी रानी को अपनी उपेक्षा से आहत पाया। उसे धरती पर खिन्न पड़ी, अस्त-व्यस्त तथा पीछे छोड़े जाने पर क्रुद्ध देखकर, पुरञ्जन — उसका बोध उसी के प्रति अपनी आसक्ति से विचलित — गहरे विषाद में गिर पड़ा।

नारद उवाच

पुरञ्जनः स्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतां भुवि ।

तत्सङ्गोन्मथितज्ञानो वैक्लव्यं परमं ययौ ॥ १८ ॥

nārada uvāca purañjanaḥ sva-mahiṣīm nirīkṣyāvadhutām bhuvi tat-saṅgonmathita-jñāno vaiklavyaṁ paramaṁ yayau

अर्थ: नारद ने कहा: अपनी रानी को धरती पर खिन्न पड़ी देखकर, पुरञ्जन, उसका बोध उसके प्रति अपनी आसक्ति से विचलित, गहरे विषाद में गिर पड़ा। (स्कन्ध 4, अध्याय 26, श्लोक 18)



आखेट से लौटकर, पुरञ्जन अपनी रानी को अपनी उपेक्षा से खिन्न तथा क्रुद्ध पड़ी पाता है, और, आसक्ति से मन विचलित होकर, गहरे विषाद में गिर पड़ता है (श्लोक 15-20)।

रानी को मनाना

तब पुरञ्जन उसे शान्त करने में लग गया। कोमल, मनाने वाले वचनों से उसने उसमें आए परिवर्तन पर शोक किया — उसका मुख अपने शुभ चिह्न के बिना, मलिन तथा हर्षहीन, क्रोध से भीषण, उसकी मधुरता विदा — और उससे विनती की कि वह और शोक न करे।

वक्त्रं न ते वितिलकं मलिनं विहर्षं
संरम्भभीममविमृष्टमपेतरागम् ।
पश्ये स्तनावपि शुचोपहतौ सुजातौ
बिम्बाधरं विगतकुङ्कुमपङ्करागम् ॥ २५ ॥

*vaktram na te vitilakam malinam viharṣaṁ saṁrambha-bhīmam avimṛṣṭam apeta-rāgam paśye
stanāv api śucopahatau sujātau bimbādharaṁ vigata-kuṅkuma-paṅka-rāgam*

अर्थ: (पुरञ्जन ने कहा:) मैं तुम्हारा मुख अपने शुभ चिह्न के बिना देखता हूँ, मलिन तथा हर्षहीन, क्रोध से भीषण तथा उसकी कोमलता विदा, और तुम्हारी सुन्दरता शोक से मन्द। (स्कन्ध 4, अध्याय 26, श्लोक 25)

और उसने मेल-मिलाप का अपना निवेदन आगे बढ़ाया, उसे अपनी प्रियतम मित्र सम्बोधित करते हुए तथा अपने आवेशपूर्ण प्रस्थान का दोष स्वीकार करते हुए, इस विश्वास के साथ कि कोई भी प्रेममयी पत्नी उस पति को अधिक देर अस्वीकार नहीं कर सकती जो विनम्र तथा व्याकुल होकर उसके पास लौट आया हो।

तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य
स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसनातुरस्य ।
का देवरं वशगतं कुसुमास्त्रवेग-
विस्रस्तपौस्नमुशती न भजेत कृत्ये ॥ २६ ॥



*tan me prasīda suhṛdaḥ kṛta-kilbiṣasya svairam gatasya mṛgayāṁ vyasanāturasya kā devaraṁ
vaśa-gataṁ kusumāstra-vega- visrasta-pauṁsnam uśatī na bhajeta kṛtye*

अर्थ: (पुरञ्जन ने कहा:) अतः मुझ पर प्रसन्न हो, अपने मित्र पर, जिसने स्वेच्छा से आखेट को जाने का दोष किया; कौन-सी प्रेममयी पत्नी अपने समर्पित पति को स्वीकार न करेगी जब वह वश में तथा प्रेम के बाणों से क्षीण होकर उसके पास आता है? (स्कन्ध 4, अध्याय 26, श्लोक 26)



कोमल तथा मनाने वाले वचनों से पुरज्जन अपनी क्रुद्ध रानी को प्रसन्न करता है और उससे मेल कर लेता है, नगरी में अपने सुख के जीवन को पुनः आरम्भ करते हुए (श्लोक 21-26)।

इस प्रकार, उसके मनाने से प्रसन्न होकर, रानी मान गई, और पुरज्जन ने पहले की भाँति अपना भोग-दौर पुनः आरम्भ किया। इसके साथ षड्विंश अध्याय समाप्त होता है — आत्मा लालसा, उपेक्षा, झगड़े, तथा मनाने के बेचैन चक्र में फँसी — कथा के अगले अध्याय के गहन मोड़ के लिए तैयार, जब काल की शक्तियाँ नगरी को घेर लेंगी।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. बेचैन लालसा हमें महत्वपूर्ण से खींच ले जाती है। यद्यपि पुरज्जन अपनी रानी को मुश्किल से छोड़ सकता था, आखेट के एक अचानक उन्माद ने उसे दूर खींच लिया। हमारी लालसाएँ चंचल स्वामी हैं, सदा हमें अगले सुख की ओर और अपने भले से दूर खींचती हुई (श्लोक 4)।
2. लापरवाह भोग वास्तविक हानि करता है। पुरज्जन का आखेट कोई निर्दोष खेल नहीं; वह वन को ऐसे कष्ट से भर देता है जिसे करुणावान् सह नहीं सकते। हमारी वासनाएँ, बिना ध्यान भोगी गई, हानि का एक ऐसा निशान छोड़ती हैं जिसे हम देखना नहीं चाहेंगे (श्लोक 9)।
3. आसक्ति बोध को विचलित करती है। अपनी रानी को अप्रसन्न देखकर, पुरज्जन अपना धैर्य पूर्णतः खो देता है — प्रेम की शक्ति से नहीं बल्कि आसक्ति के बन्धन से। हम जितना अधिक चिपकते हैं, हमारी शान्ति उतनी ही सहजता से उलट जाती है (श्लोक 18)।
4. मोहित आत्मा झगड़े तथा मनाने के चक्र में जीती है। पुरज्जन उपेक्षा करता है, रानी रूठती है, वह मनाता है, और दौर पुनः आरम्भ होता है। इन्द्रियों द्वारा शासित जीवन स्थिर आनन्द नहीं बल्कि लालसा तथा मरम्मत का यह बेचैन झूला है (श्लोक 18-26)।
5. अन्योक्ति एक दर्पण है, प्रेम-कथा नहीं। नारद इसे आत्मा तथा मन के एक चित्र के रूप में कहते हैं, प्रशंसा योग्य किसी प्रेम-कथा के रूप में नहीं। सही रूप से पढ़ा जाए, तो यह हमारे अपने उलझे दिनों का ही ढर्रा हमारे समक्ष उठाता है (श्लोक 1-26)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

अपने पुराने तथा राजसी आवरण के नीचे, यह छोटा अध्याय एक ऐसे ढर्रे का वर्णन करता है जिसे हममें से अधिकांश घनिष्ठता से जानते हैं। पुरञ्जन अपनी नगरी के सुखों से दूर रहना मुश्किल से सह सकता है — और फिर भी जिस क्षण एक नई लालसा उसे पकड़ती है, वह चल पड़ता है, अपने द्वारा की जाने वाली हानि तथा अपने द्वारा उपेक्षित प्रेम की परवाह किए बिना। और जब वह लौटकर पाता है कि उसकी उपेक्षा ने उसे मूल्य चुकाया है, तो वह विषाद में डाल दिया जाता है, और उसे शान्ति की ओर मनाने तथा फुसलाने में स्वयं को व्यय करना पड़ता है, केवल सम्पूर्ण चक्र को पुनः आरम्भ करने के लिए। यही इन्द्रियों द्वारा चलाए जीवन का झूला है: हम अगले सुख का पीछा करते हैं, हम सचमुच महत्त्वपूर्ण की उपेक्षा करते हैं, हम उस उपेक्षा की टीस अनुभव करते हैं, हम बातें सुधारते हैं, और हम घूम जाते हैं। कथा जो चुपचाप उजागर करती है वह यह है कि यह बिल्कुल भी स्वतन्त्रता नहीं है, यद्यपि यह अपने राज्य का भोग करते एक राजा की वेशभूषा पहनती है। पुरञ्जन अपने सुखों का स्वामी नहीं है; वह उनका सेवक है, लालसा से अपराध-बोध से मनाने तक घसीटा गया, कभी विश्राम में नहीं। भागवत हमें मानव होने के लिए नहीं डाँट रहा; वह एक दर्पण उठा रहा है ताकि हम उस रहट को देखें और उससे उतरने को तरसें। और उतरने का मार्ग नगरी या रानी से घृणा करना नहीं है — शरीर तथा मन हमारे शत्रु नहीं हैं — बल्कि उस एक बात को स्मरण करना है जिसे पुरञ्जन भूल गया है: भीतर का अज्ञात मित्र, जिसकी उपस्थिति में ही बेचैन हृदय अन्ततः स्थिर हो सकता है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, उस झूले पर ध्यान दें और उससे उतरें, यदि केवल एक बार। एक ऐसे क्षण को देखें जब कोई लालसा आपको किसी महत्त्वपूर्ण वस्तु से दूर खींचती है — कोई विक्षेप जो आपको कर्तव्य से खींचता है, कोई भोग जो किसी प्रिय की उपेक्षा करता है — और, उसका अनुसरण करने से पहले, रुकें और उस आवेग को इन शब्दों के साथ भगवान् को अर्पित करें — “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय”। आपको इच्छा की निन्दा नहीं करनी; बस उसे पुरञ्जन के आखेट-उन्माद की भाँति अपने को घसीटने न दें। और यदि आप स्वयं को, बाद में, अपनी ही लापरवाही के किसी परिणाम को “मनाने” के परिचित कार्य में पाएँ — किसी उपेक्षा को सँवारना, किसी छोटी हानि की मरम्मत — तो उसे विनम्रता से करें, और उसे अपना विश्राम लालसा तथा मरम्मत के अनन्त दौर में नहीं, बल्कि भीतर के मित्र की स्थिर उपस्थिति में खोजने का स्मरण बनने दें, जहाँ ही बेचैन हृदय शान्त होता है।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का षड्विंश अध्याय नारद की पुरञ्जन की कथा को बेचैन भोग के एक दृश्य के साथ जारी रखता है। यद्यपि वह अपनी रानी को मुश्किल से छोड़ सकता है, पुरञ्जन आखेट के उन्माद से ग्रस्त होकर वन को निकल पड़ता है, अनेक प्राणियों का ऐसा संहार करते हुए जो करुणावानों को शोकाकुल करता है। लौटकर, वह अपनी रानी को अपनी उपेक्षा से आहत, खिन्न तथा क्रुद्ध पड़ी पाता है; और, उसका बोध उसी के प्रति अपनी आसक्ति से विचलित, वह विषाद में गिर पड़ता है और उसे कोमल, मनाने वाले वचनों से प्रसन्न करना पड़ता है, अन्ततः मेल कर तथा अपने सुख के जीवन को पुनः आरम्भ करते हुए। जैसा नारद अभिप्राय रखते हैं, यह मोहित आत्मा का एक दर्पण है: चंचल लालसाओं द्वारा महत्त्वपूर्ण से खींची गई, उस हानि को करती हुई जिसे वह देखेगी नहीं, और उपेक्षा, झगड़े, तथा मनाने के अनन्त झूले में फँसी — कभी विश्राम में नहीं। इस प्रकार अध्याय उस बेचैन बन्धन को उजागर करता है जो एक राजा के भोग का स्वाँग करता है, और आने वाले गहन मोड़ के लिए मंच तैयार करता है, जब काल की शक्तियाँ नगरी को घेर लेती हैं।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, षड्विंश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-4-chapter-26-puranjanas-hunt-and-the-queens-anger-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट